भाषा और साहित्य का संगम

डॉ0 ममता शर्मा
सीनियर प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
गवर्नमेन्ट कालिज, कृष्णनगर (हरियाणा)

सारांशिका

शैशवावस्था से बाल्यावस्था और फिर आगे की अवस्थाओं की ओर बढते हुए हम अपने परिवारों में भाषा को बोलना और समझना सीखते हैं। भाषा सीखते हुए हम कई और चीजें भी सीखते हैं । अपनी भाषा के माध्यम से हमें, अपने परिवार तथा समुदाय के नैतिक क्रम से परिचित कराया जाता है। हम अपनी दैनिक जिंदगी में नाम पुकारना, पहचान करना, वर्गीकृत करना, श्रेणीबद्ध करना, मूल्यांकन करना इत्यादि सीखते हैं । यही नहीं, अपने समुदाय, अपने इर्द गिर्द के समाज की संस्कृति के विषय में जानने में भाषा ही हमारी सहायक होती हैं । संस्कृति के विषय में जानने के लिए हमें भाषा की मौखिक और लिखित परम्पराओं को समझना होना होता है । इसी प्रक्रिया में हमारा परिचय साहित्य से होता है और साहित्य हमें दूर दराज के समाजों की जटिलताओं तथा विशिष्टताओं से परिचित करा पाता है। एक यथार्थ में हम स्वयं जीते हैं और दूसरे यथार्थ का सामना करने की हिम्मत साहित्य देता है, तो हमारे जीवन की शुरूआत में मिली शिक्षा हमें साहित्य और अन्य कई माध्यमों से हमारे समाज और संस्कृति और भाषा शिक्षा के इसी गहरे नाते को अपने लेखों के माध्यम से आप तक पहुँचा रहे हैं। शिक्षा के माध्यम से सरलता से समझा देते हैं कि 'संस्कृति की बुनियाद भाषा ही होती है '।

मुख्य शब्दः भाषा, साहित्य संस्कृति, इतिहास, माध्यम

प्रस्तावना

इसमें कोई संदेह नही कि परिवार से विद्यालय में कदम रखते हुए बच्चे सर्वप्रथम भाषा पर ही पकड हासिल करते हैं, और फिर अन्य विषयों को सीखने की शुरूआत करते हैं। बच्चों की शिक्षा के आरंभिक वर्ष उनके व्यक्तित्व के पूर्ण विकास हेतु नींव के वर्ष बन जाते हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि देश के हर बच्चे की इस नींव को मजबूत करने के लिए आरम्भिक शिक्षा उन्हें अधिकार के रूप में दी जाये। यह तो मानना ही पडेगा कि ऐसे बहुत सारे व्यक्तित्व हमारे समाज में बहुसंख्यक होंगे जिनका काम और जीवन साहित्य के अभाव में बखूबी चल जाता है मगर साहित्य की कमी से होने वाली हानियों का उन्हे कोई अहसास भी नहीं होता।

यह भी नहीं कहा जा सकता कि उनके जीने में कोई सघनता और सार्थकता नहीं होती। कम से कम हिंदी समाज में साहित्य के अध्यापन की जो स्थिति है और उसके साथ ही यह बडी विडंबना यह है कि जो व्यक्ति परास्नातक स्तर तक साहित्य पढते हैं, इनमें से अधिकांश अपना अध्ययन समाप्त होने के बाद साहित्य से संबंध तोड लेते हैं और उनकी साहित्य में आगे कोई रूचि भी नहीं रह जाती है।

भाषा और साहित्य का संगम

हमारा समय मनुष्य के इतिहास में संभवतः सबसे हिंसक समय है। इक्कीसवीं सदी के पहले दशक में वैश्विक स्तर पर जितनी हिंसा फैली है उतनी बीसवीं सदी के पहते दशक में बिल्कुल भी नहीं थी और न ही उसके आखिरी दशक में। संयुक्त राष्ट्र संघ की एक रिपोर्ट से यह भी स्पष्ट होता है कि समकालीन स्थिति में युद्ध के अलावा जिसमें अफगानिस्तान, मध्यपूर्व और यूरोप के कई देश शामिल हैं, बगावत सैन्य विद्रोह, सशस्त्र प्रतिरोध आदि को मिलाकर सौ से अधिक गृह युद्ध चल रहे हैं। हमारे देश में ही कश्मीर, उत्तर–पूर्व और नक्सल प्रभावित हिस्से अशांत और लगभग रोजाना हिंसा की लपेट में हैं । हमारे समय की एक बडी विडंबना यह है कि भूमण्डलीकृत समय सबसे हिंसक समय है। यह भाग निजी या सैन्य या पुलिस या विद्रोहियों की सशस्त्र हिंसा तक सीमित नही है अपितु इसका आयत बढता ही जा रहा है जैसे मनोरंजन, फैशन, खेलकूद, मीडिया आदि सभी इन दिनों आक्रामक हो उठे हैं – ये सभी विधाएँ तथाकथित –किलर इंस्क्टि' यानि जानमारू भावना से प्रेरित हैं और उसे स्वीकार करने में उन्हे कोई संकोच तक नहीं है। धीरे–धीरे सभी धर्म–हिंसा और अक्रामकता की ओर बढते जा रहे हैं। यह बढत अब दूसरे धर्मों के प्रति असहिष्णुता और हिंसा तक पहुँच चुकी है। उनमें से अधिकतर न सिर्फ धार्मिक बहुलता के प्रति, जो सदियों से उनका महत्वपूर्ण पक्ष नही है, असहिष्णु हो चुके हैं। भारत में हिन्दुत्व और जिहादी इस्लाम दोनों ही इसके उदाहरण हैं। धर्मों का बहुलता से अपसरण एक खतरनाक विकास है और इससे समूचे संसार की सांस्कृतिक बहुलता की क्षति हो रही है।

इस निराश करने वाले परिदृश्य में हम साहित्य की कुछ जगह खोजने की कोशिश करते हैं। सबसे पहले तो यह कि जैसे राजनीति, धर्म, विज्ञान आदि के अपने–अपने आयाम हैं। जीवन में आस्वाद, रस ओर आनंद खोजना–बढाना उसका सौंदर्यमूलक पक्ष है। हमें वृहत और विराट से जोडने और स्पंदित करने का उसका आध्यात्मिक पक्ष है। समता, स्वतंत्रता और न्याय पर जिद करने वाला, उनके लिए एक तरह है लगातार सत्याग्रह करने वाला उसका लोकतांत्रिक पक्ष है। ज्ञान और अनुभव के विखंडन और विशेशीकरण के कारण उसके समग्रता और संग्रथन पर आग्रह करने वाला बौद्धिक पक्ष है। भाषा को उसके विविध रूपों में सक्रिय–सजीव रखने का उसका सामाजिक पक्ष है। साहित्य निष्पक्ष व्यापार नहीं है, न ही वह तटस्थ रहता है–उसकी अपने पक्षधरता है। साहित्य जीवन की समग्रता, बहुलता, उसकी अपर्याप्तताओं और अंतर्विरोधों का, उसके अधूरेपन और सम्पूर्णता की आकांक्षा का उत्सव मनाता है। वह किसी एक आवाज या अनुभव या दृष्टि का वर्चस्व स्वीकार नही करता। वह अनेकों लिंकिन अद्वितीय आवाजों द्वारा सच और सच्चाई की बहुलता पर विश्वास करता है। उसका नैतिक अधिकार और आभा इस बात से आते हैं कि वह निरन्तर अपने पर, अपने सच पर सन्देह करता है। हमारे एक कवि अज्ञेय के अनुसार 'मै सच लिखती हूँ/लिखकर सब झूठा करती जाती हूँ'। धर्म या विज्ञान या राजनीति हमारे समय में

ऐसा आत्मसंदेह उत्पन्न करता हो इसका बहुत कम प्रमाण देखने को मिलता है। इसके विपरीत हर एक व्यक्ति मानता है कि सच पर उनका न सिर्फ मौसमी हक बल्कि एकाधिकार भी है। साहित्य का सच युक्त और वैध होता है । बल्कि अनेक रूपों में अधूरा सच होता है–जब तक पाठक उसमें थोडा–सा आना सच न मिलाएँ तब तक वह पूरा नहीं होता। साहित्य की इतनी सारी व्याख्याएँ इसी प्रक्रिया के कारण संभव होती है । साहित्य सच ऐसा सच भी है जो न सिर्फ अपने में दूसरे का हिस्सेदार बनाता है बल्कि दूसरे में स्वयं अपना सच रचने–पहचानने का उत्साह भी उपजाता है।

साहित्य वह जगह है जहाँ समाज, राजनीति, धर्म, व्यक्ति, व्यवस्था, मान्यता, नैतिकता आदि सब प्रश्नों की परिधि में आते हैं। वह इस समय संसार की सबसे खुली और लोकतांत्रिक प्रश्नभूमि है। ऐसा प्रश्नांकन समाजविज्ञान और दर्शन जैसे गिने –चुने अनुशासनों को छोडकर बाकी से गायब हो चुका है। साहित्य हमें बार–बार यह भी याद दिलाता है कि फैंसला मत दो। क्योंकि तुम पर भी फैसला दिया जायेगा। साहित्य का परिसर सहानुभूति का परिसर होता है–निर्णय का बाडा नहीं । यह नहीं कि उसे सही–गलत की पहचान या समझा नही होती।

साहित्य हमें अकेलेपन का अवसर भी देता है लेकिन ऐसे हम दूसरों से कट न जाएँ। वह जिस एकांत में हमें जब–तब ले जाता है उसमें दूसरे कई बार अपनी अनुपस्थिति से भी उपस्थित रहते है। दरअसल हर समय साहित्य की सीधी–सी सीख यही है कि हम अकेले नहीं है, कि दूसरे हैं और साथ हैं। साहित्य साहचर्य का मामला है–हम हैं क्योंकि दूसरे हैं और हमारी साझा नियति और मुक्ति है। वह हमें यह भी बताता रहता है कि दूसरे भी हम जैसे ही हैं और यह कि दूसरे न होते तो हम भी न होते और हम और दूसरे मिलकर ही यह दुनियां बनाते–बिगाड़ते हैं ।

एक स्वर पर साहित्य हमारे क्षीण और शिथिल पड़ते ब्रह्मांड –बोध को भी सक्रिय रखता है–वह जो नही दिखता या पकड़ में आता उससे भी हमें जोड़ता और संवाद–रत कराता है। वह हमें इस तरह भी, सँकरेपर और आत्मरति की जकडबंदी से मुक्त करता है । हम महसूस कर पाते हैं कि पृथ्वी, आकाशगंगाएँ, चन्द्र और दिवाकर, सागर और नदियाँ, पक्षीगण, वृक्ष और लताएँ अग्नि, जल, वायु आदि सब हमारे संसार का जरूरी और सुन्दर अंग हैं और हमारे होने में इन सबकी निर्णायक भूमिका है। हमें सर्फ हमारा सामाज भर नहीं रचता, समूचा ब्रह्माण्ड उसमें कुछ न कुछ योगदान करता है। हम एक तुच्छ घटना नहीं हैं–हम स्वयं ब्रह्माण्ड के लिए आश्चर्य हैं। यह हमारे सीमित–मानसिक जीवन को विराटता का आयाम देता है। एक ऐसे समय में जब इतनी सारी शक्तियाँ हमारी तुच्छता उजागर करने में जी–जान से व्यस्त हैं, साहित्य उनसे बिल्कुल अलग कुछ उदात्त करता है। साहित्य सदियों से मनुश्य की स्वप्नभूमि रहा है। मंगल और विराट के, उदात्त और विशाल के अनेक सपने सबसे पहले साहित्य में ही देखे गए थे–हमारे वेदों और महाकाव्यों में इसका विपुल साक्ष्य मिलता है। हमारे स्वप्नहीन समय में इसका एहतराम करते हुए कि दुर्भाग्य से मनुष्य की अपनी करतूतों की वजह से अनेक महान स्वप्न का दबाव आज दृश्य पर बनाए हुए हैं कि हम विकल्पहीन नहीं है, कि दुनिया बदली और बेहतर की जा सकती है, कि एक ही दृश्टि या विचार का वर्चस्व अनिवार्य नहीं है। बिना हिचक यह दावा किया जा सकता है कि साहित्य इस समय उन थोड़ी सी जगहों में बनता है जिनमें सच, विचार और अनुभव की बहुलता और विशिष्टता का सहज सम्मान और विन्यास होता है । शायद यही कारण है कि साहित्य के सच बासी नहीं पडते और कालांतर में अतिक्रमित नहीं होते, जैसेकि विज्ञान आदि के होते रहते हैं साहित्य किसी को भी नहीं बख्शता– न अपने को, न देवताओं और दुश्टों और धूर्तों को, न नायकों – अधिनायकों–खलनायकों को यहाँ तक कि वह सब्र और सुंदरता पर न्याय की ओर से चौकसी करता है। उसके लिए, कम से कम अब, स्वतंत्रता–समता–न्याय की मूल्यत्रयी ऐसी है कि उस पर किसी तरह समझौता करने को वह तैयार नही ।

भाषाएँ मनुष्य की समृद्ध विरासत का बडा मूल्यवान हिस्सा है । उनमें हमारी जातीय स्मृतियाँ निबद्ध हैं। उनका संकट में पड़ना हमारी स्मृति के शिथिल पड़ने के बराबर है । साहित्य भाषाओं की इस धनी बहुलता को सक्रिय, सजीव रखता है। वह समाजों को समृतिहीन और शब्द–संकोचग्रस्त होने से बचाता है और भाषाओं को उनकी सूक्ष्मता, संवेदनशीलता, कल्पनामयता, जटिलता और विविधता में सक्रिय रखता है। यह उसका सबसे बडा सामाजिक कर्तव्य और योगदान है। दुनिया की सांस्कृतिक विविधता के लिए भाशाओं की सजीव उपस्थिति और सक्रियता बहुत महत्वपूर्ण तत्व है। दुनिया की हजारों मातृभाषाओं को बचाने के लिए वैसे ही विश्व–अभियान की आवश्यकता है जैसे कि पर्यावरण के लिए संभव हुआ है।

जो साधारण है, आर्थिक दृष्टि से विपन्न और असमर्थ है उसे राजनीति, बाजार के दुरांतक में, हाशिये पर खिसकाती जाती है, लेकिन साहित्य में साधारण की महिमा है। पिछली एक सदी का साहित्य रहा है यह नहीं कि उसने उस महिमा का सिर्फ मंडन किया है, वह जानता है कि उसके लिए विकट संघर्श जरूरी है । साहित्य ने यह संघर्श हमारे यहाँ भक्तिकाल से लेकर आज तक किया है और उसी का नतीजा है कि साधारण आज साहित्य के केन्द्र में है। साहित्य हमें अपनी साधारण जिंदगी के आशय, अर्न्तध्वनियाँ और महत्व समझने में मदद करता है। यह साधारण की गरिमा का भी उद्घाटन करता है। उसके संघर्ष, उसके अर्न्तविरोधों और विडंबनाओं का भी। आज जब राजनीति, बाजार, मीडिया आदि सभी साधारण को दबाने–बरकाने और हाशिये पर फेंकने पर आतुर है, साधारण का लगभग एकमात्र शरण्य साहित्य है। यह उसका असली राजनैतिक रोल है। बल्कि यह कहना अनुचित न होगा कि आज साहित्य बाजारू राजनीति का असली और साहसिक प्रतिपक्ष है।

यह कहा जा सकता है कि आज साहित्य प्रतिरोध की रंगभूमि, निजता और सामाजिकता के बचे रहने की कल्पनाभूमि, विचार को बहिष्कृत करने, प्रबंधन को सब कुछ मानने की बेबसी के विरूद्ध रणभूमि, निरन्तरता का आकाश, परिवर्तन की वसुंधरा, मानवीय नियति, सफलता– समग्रता, स्थानीयता के साथ सार्वभौमिकता की प्रश्नभूमि, मनुष्यता की असमाप्य बहुलता की जयभूमि, कलियुग में आत्म की धर्मभूमि है । वह मनुष्य की चरम जिज्ञासाओं का अंतिम अरण्य हैं ।

हम सभी, यानि वह जो साहित्य पढ़ते–गुनते हैं और जिन्हें जिन्दगी की आपाधापी से अभी भी फुरसत और समय है वह जानते हैं कि साहित्य हमें अपने स्व में रहने देकर भी दूसरा बनाता है। जिसका हमें बिल्कुल भी ज्ञान नहीं उनके लिए हम आँसू बहाते हैं। साहित्य सिर्फ दूर से, किसी राम भरोसे टुकुर–टुकुर नहीं देखता, वह 'कबीरा खड़ा बाजार में' के अनुरूप बीचों–बीच खड़ा होता है –हमारे साथ। वह बार–बार हमें जताता है। अपने आदर्श रूप में साहित्य दूसरों के विचारों का उपनिवेश होने के बजाय अपनी अलग वैचारिक सत्ता रखता है। वह दूसरे क्षेत्रों और अनुशासनों में विकसित विचारों को हिसाब में लेता है, उनसे संवाद और मुठभेड करता है और उनमें से जो उसे काम का लगे उसे अपनाता भी है। लेकिन वह स्वयं अपनी वैचारिक दृष्टि अर्जित और प्रस्तुत करता है।

जो लोग अपने जीवन से, दी गयी दुनिया और व्यवस्था से, उन परिवर्तनों से जो उन पर लाद दिये गये हैं और जिनमें उनकी कोई हिस्सेदारी नही रही है, संतुष्ट हैं, साहित्य निश्चिय ही उनके किसी काम का नहीं हैं। जिन्हे लगता है कि दुनिया में कुछ खास फेरबदल नहीं किया जा सकता और अंततः मानव व्यर्थ हो आने को अभिषप्त है, साहित्य उनके भी काम का नहीं हो सकता। जिन्हें यकीन है कि उनके पास सच है और जिन्हें कोई अभाव नहीं सालता साहित्य को उनसे भी कुछ कहना नहीं हो सकता। उनके बरक्स जो लोग असंतुष्ट हैं, जिन्हें आत्मा और अन्तःकरण के कई अभाव और भूलें सालते हैं, जो बदलाव और विकल्प की संभावना देख पाते हैं, जिन्हे लगता है कि भाषा पर बेहतर पकड़ उन्हें अधिक सघन–सटीक मनुष्य बनाती है, साहित्य उनको संबोधित करता है, उन्हे कुछ शक्ति और सेहत,. ऊर्जा और बेचैनी सपने और उत्सुकताएँ दे सकता है। आध्यात्मिक और बौद्धिक रूप से निठल्लों के लिए साहित्य किसी भी प्रकार का रामबाण नहीं हो सकता। साहित्य घावों पर मरहम लगा सकता है पर उन्हीं के जिन्हें इसकी पहचान हो कि औरों के भी ज्यादा गहरे घाव हैं, कि हम सभी कभी–न–कभी एक दूसरे को आहत करते हैं, कि घाव हमारी जिजीविषा से करे हैं, दवा–दारू से नहीं, भले उनसे कुछ समय पर कुछ राहत मिल जाती हो।

साहित्य मूलतः संसार के प्रति अनुराग से उपजता है। उसके मुख्य प्रभाव हममें इस अुनराग को अधिक गहरा और उत्कट, सार्थक और सूक्ष्म करना होता है। साहित्य हमें सिखाता है कि यह संसार सुदर है, कि उसे सुंदरतम किया जा सकता है, कि उसकी सुन्दरता में हम सबका बराबरी का हिस्सा है, कि अगर वह हिस्सा हमें नहीं मिल पाया है तो हमें उसकी माँग और कोशिश करनी चाहिए, कि सारे सच कल्पना–प्रसूत होते हैं, कि सच होने के लिए पहले सपना होना चाहिए, कि मनुष्य की नियति मनुष्य के हाथ में है, कि हम सब में हैं और सब हम में हैं और फिर भी हम अकेले हैं, कि हमें एकांत और सामुदायिकता दोनों चाहिए, कि स्वतंत्रता–समता–न्याय के बिना मानवता कभी सम्पूर्ण नहीं हो सकती। मनुष्य होने के नाते हम संपूर्णता की आकांक्षा करते हैं। अगर हमारी आखों में आँसू आते हैं तो सहस्रों प्रकाशवर्ष दूर किसी नक्षत्र की आँखें भी पसीज उठती हैं, कि सब कुछ हमारे बस में नहीं है लेकिन बहुत कुछ फिर भी है। हमारी प्रश्नवाचकता और उत्सवधर्मिता परस्पर विरोधी नहीं है। न सिर्फ संसार को समझने–बदलने की एक दृष्टि बल्कि कई दृष्टियाँ हैं, ऐसा ही होना चाहिए। हमें साहित्य चाहिए क्योंकि हमें अपने संसारिक अनुराग को टिकाऊ हितकारी और दीर्घकालीन बनाना है। साहित्य के परिसर में हम अधिक देखते, अधिक सुनते, अधिक महसूस करते, अधिक समझते गुनते हैं। साहित्य में हम की भूमिका अधिक होती हैं । क्योंकि साहित्य के समन्दर में, किताबों की मणियाँ, शब्दों के मोती और वाक्य रूपी रत्न समाहित हैं।

सन्दर्भ सूची –

(1) अशोक बाजपेयी (2010) राष्ट्रीय कला संस्थान, संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार, नयी दिल्ली

(2) शंकर शरण – एन0सी0ई0आर0टी0, नयी दिल्ली ।

(3) अज्ञेय –(2005) हिन्दी का वर्तमान और भविष्य ''केन्द्र और परिधि, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नयी दिल्ली

(4) मंजुशा रानी (2015) –साहित्य का स्वरूप (एक परिचय) जर्नल ऑफ एडवांस एण्ड स्कोलरली रिसर्च इन एलाइड एजूकेशन (2015) ISSN-2230-7540

(5) डा0 नगेन्द्र – भारतीय साहित्य (भूमिका)

(6) इन्टरनेट

(7) प्रकाशित पत्र पत्रिकाएं